**E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi**

# शकुन्तला का चरित्र चित्रण

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

शकुन्तला अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से वह मुग्धा नायिका की श्रेणी में आती है। कालिदास की सभी नायिकाओं में वह सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने की अधिकारिणी है। उसके पिता का नाम विश्वामित्र तथा माता का नाम मेनका है। लोक-लज्जा वश उसकी माता ने उसे जन्म लेते ही मालिनी नदी के तट पर कण्वाश्रम के पास छोड़ दिया। इस प्रकार उसे अपनी शैशवावस्था से ही वात्सल्य प्रेम से वञ्चित होना पड़ा। हाँ, एक बात अवश्य है वह यह कि अनिन्द्य सुन्दरी मेनका की पुत्री होने के नाते उसे विरासत में अलौकिक सौन्दर्य-सम्पत्ति अवश्य मिली। दयालु महर्षि कण्व ने आश्रम में उसका लालन-पालन किया, अतः वही उसके धर्म-पिता बने। मालिनी-तट पर पक्षियों से आवृत होने के कारण ही उन्होंने उसका शकुन्तला (शकुन्तः परिवारिता) यह सार्थक नाम रखा। वह अवस्था में अपनी दो अन्य सखियों अनसूया एवं प्रियंवदा से बड़ी है क्योंकि पिता कण्व सर्वप्रथम उसका विवाह करने हेतु कृतसङ्कल्प हैं। वह सम्पूर्ण नाटक में पाँच अङ्कों (१, ३, ४, ५, ७) में हमारे सामने आती है जिन दो अङ्कों (द्वितीय तथा षष्ठ) में वह दृष्टिगोचर नहीं होती उनमें भी सभी घटनाक्रम की केन्द्र बिन्दु वही है। शकुन्तला की चरित्रगत विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

**१. अनिन्द्य सुन्दरी**- तपोवन की वनदेवी की भाँति तापस कन्या शकुन्तला नैसर्गिक सुषमा की प्रतिमूर्ति है। राजा दुष्यन्त प्रथम दर्शन में ही उसके नैसर्गिक सौन्दर्य पर मन्त्रमुग्ध होता है- **"इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः"**। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में लावण्यातिशय प्रस्फुरित हो रहा है। नवकिसलय के समान उसके अधर की लालिमा, कोमल शाखाओं के समान उसकी भुजायें तथा समस्त अङ्गों में फूल के समान व्याप्त उसका यौवन भला किसके मन को अधीर नहीं बना सकता? यदि दुष्यन्त उस पर लुभा गया तो आश्चर्य ही क्या?

**"अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणी बाहू।**

**कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सनद्धम्"।।**

ऐसा प्रतीत होता है कि जगत्त्रय स्रष्टा ब्रह्मा ने अपनी सौन्दर्य कल्पना को साकार रूप देने के लिये ही समस्त सौन्दर्य-सामग्री को लेकर अपनी चित्त की तुलिका से ही शकुन्तला रूपी सजीव चित्र का निर्माण किया है। तभी तो वह एक अलौकिक एवं अप्रतिम स्त्री-रत्न के रूप में प्रतिष्ठित हो सकी-

**"चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा**

**रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।**

**स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे**

**धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः"।।**

शकुन्तला देवी सौन्दर्य से ओत-प्रोत है। भला मानवीय सृष्टि में उसके (देवी सौन्दर्य के) दर्शन कैसे हो सकते हैं? प्रभा से तरल ज्योति क्या पृथिवी से उद्भूत हो सकती है?-

**"मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।**

**न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्"।।**

शकुन्तला के सौन्दर्य में एक ऐसी नैसर्गिक प्रखरता एवं दीप्ति है कि उसे अपनी सजावट के लिए अन्य किसी भी सौन्दर्योपकरण की आवश्यकता नहीं। उसका रूप आभूषणों का दास नहीं अपितु आभूषण उसके दास हैं, क्योंकि अनाभूषण को भी आभूषण बना देने की क्षमता उसमें विराजमान है। असुन्दर उपकरणों के मध्य भी उसका निखर जाता है। तभी तो दुष्यन्त उसके रूपसम्पत्ति की महिमा का गुणगान करते हुए कहता है-

**"इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्"।।**

शकुन्तला के रूप में एक अपूर्व निष्कलुषता एवं पावनता है। वह ऐसे पुष्प के समान है जो कभी सुँघा न गया हो, ऐसे किसलय के सदृश है जो नख-क्षत से आहत न हो, ऐसे रत्न की भाँति है जिस पर कोई आघात न लगा हो तथा ऐसे मधु के सदृश है जिसके रस का आस्वाद न किया गया हो। वस्तुतः उसका रूप तो पुष्पों का अखण्डित फल ही है-

**अनाघ्रातं पुष्पं किसलयलमलूनं कररुहै-**

**रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।**

**अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं**

**न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।**

उसके शारीरिक सौन्दर्य को एक ओर जहाँ उसकी लज्जाशीलता, शालीनता तथा सरलता आदि आध्यात्मिक गुणों ने महनीय बना दिया है वहीं दूसरी ओर उसके नवयौवन ने भी उसमें चार चांद लगा दिये हैं **"कुसुममित्र सन्नद्धम्"**।

**२. एकनिष्ठ प्रेमिका**- आश्रम के वातावरण में पालित होने के कारण युवावस्था में विद्यमान होने पर भी शकुन्तला का यौवन के अभिन्न मित्र काम से परिचय अभी तक नहीं हुआ था, परन्तु दुष्यन्त के प्रथम दर्शन मात्र से ही उसके हृदय में भी काम सञ्चार हो जाता है- 'किं तु खल्विमं प्रक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता'। निस्संदेह शकुन्तला के हृदय में उद्भूत इस प्रकार के काम विकार से ही उसकी प्रणय कहानी प्रारम्भ होती है। उसे स्वयं अपने हृदय के इस आकस्मिक तथा अप्रत्याशित प्रेम-विकार पर आश्चर्य होता है, क्योंकि इसके पूर्व उसे इस प्रकार की कोई अनुभूति नहीं हुई थी। उसका काम-विकार सखियों के परिहास एवं दुष्यन्त के सम्पर्क के कारण प्रेम-भावना का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि शील सङ्कोचवश शकुन्तला अपने मनो विकार को प्रकट न होने देने का प्रयत्न करती है परन्तु दुष्यन्त अपने प्रति उसकी प्रेमासक्ति को जान जाता है-

**"कामं च तिष्ठति मदाननसंमुखीनां**

**भूयिष्ठमन्यविषया व तु दृष्टिरस्याः"।।**

उसका प्रेमविकार बढ़ जाता है पर वह अपनी अभिन्न सहचरी दोनों सखियों से भी अपने प्रेम-विकार के बारे में बताने में साहस नहीं जुटा पाती- **"बलवान् खलु मेऽभिनिवेश.....निवेदयितुम्"**।

शकुन्तला का प्रेम अपने प्रियतम की अनुकूलता की अपेक्षा करता है। प्रेमी के तिरस्कार-भय से वह प्रणय निवेदन हेतु स्वयं आगे नहीं बढ़ पाती- **"हला! चिन्तयाम्यहं! अवधारणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्"**।

दुष्यन्त के प्रति आसक्तचित्ता शकुन्तला उसके वियोग में जब दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगती है तब उसकी सखियों द्वारा बार-बार आग्रह करने पर शकुन्तला जिन शब्दों में अपनी मनोव्यथा का कारण बतलाती है उसमें उसके दुष्यन्त विषयक अविचल प्रेम का प्रकाशन होता है- **"तद्यदि वामनुमतं तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथा सिवत मे तिलोदकम्"**।

दुष्यन्त के वियोगकाल में वह चक्रवाकी की भाँति क्षण प्रतिक्षण दुष्यन्त के चिन्तन में निमग्न रहती है। फलस्वरूप अतिथि सत्कार न कर पाने के कारण उसे अदूरकोप, कोपावतार दुर्वासा के दारुण कोप का भाजन होना पड़ता है । सखियाँ तो उसकी प्रेम की गहराई को अच्छी तरह समझती है-**"भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति किं पुनरागन्तुकम्"**। पर उससे क्या होता है? अदूरकोप दुर्वासा तो इसे नहीं समझते।

सपत्नियों की समस्या पिता-पुत्री दोनों के समक्ष विद्यमान है। शकुन्तला की दोनों सखियाँ भी इससे अवगत है। शकुन्तला का अतीव चतुरता यह लक्षित करके प्रियंवदा को कहना- **"हला! किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन"** सपत्नियों के प्रति नारीसुलभ उसकी ईर्ष्या का द्योतक है वहीं दूसरी ओर उसकी प्रेमसम्बन्धी एकाधार इच्छा का परिचायक है।

**३. पतिव्रता पत्नी**-पञ्चम अङ्क में पति से तिरस्कृत होकर वह पुरोहित के घर रहना पसन्द नहीं करती अपितु अपनी माता मेनका के साथ हेम-कूट पर्वत पर चली जाती है और वहीं पति-परित्यक्ता पतिव्रता सीता की भाँति अपनी विरहमय घड़ियां बिताती है-

**"वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।**
**अति निष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति"।।**

नाटक के सातवें अङ्क में दुष्यन्त तथा शकुन्तला का मिलन होता है। दुष्यन्त शकुन्तला द्वारा अपने को पहचान लिए जाने पर ही सन्तुष्ट एवं आनन्दित हो जाता है- **'प्रिये.....यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि'**। वह उसके चरणों में अपराधी की भाँति गिर पड़ता है और अपनी क्रूरता के लिए पश्चात्ताप व्यक्त करता है। उस समय भी शकुन्तला सहिष्णु पतिव्रता नारी की भाँति

दुष्यन्त के लिए किसी भी प्रकार के कठोर शब्द का प्रयोग नहीं करती है। केवल अपने भाग्य पर ही दोषारोपण करती हुई उसे उठाती है-

"उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं.....सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृतः।

शकुन्तला के चरणों में दुष्यन्त का प्रणिपात शकुन्तला के एकनिष्ठ पतिप्रेम की विजय है और अपर वियोग रूप दारुण-दुःख के सहने पर भी अपने पति दुष्यन्त के प्रति कटु शब्द न कहना उसके पतिव्रता स्वरूप का परिचायक है।

**४. सुशील एवं लज्जावती**-तपोवन के आत्मीयता एवं स्नेहमय वातावरण में पालित एवं पोषित होने के कारण शकुन्तला स्वभावतः सुशील एवं लज्जावती है। यद्यपि तीनों सखियाँ समवयस्का है और तीनों का जीवन यापन एक साथ होता है, परन्तु शकुन्तला के शील एवं लज्जा ये दो गुण ऐसे हैं जो उसके व्यक्तित्व को अन्य दो सखियों से पृथक् कर देते हैं। दुष्यन्त के प्रथम दर्शन में ही उसके हृदय में काम-विकार का प्रादुर्भाव हो जाता है परन्तु वह लज्जावश उसे प्रकट नहीं करती। प्रथम अङ्क में जब राजा उसके दैवी स्वरूप की प्रशस्ति करता है तो वह लज्जा के कारण सिर झुका लेती है- **"शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति"**।

राजा के प्रति उसका उद्दाम प्रेम है पर वह उसका प्रकाशन शील सङ्कोचवश नहीं कर पाती। उसके इस गुण का वर्णन राजा स्वयं करता है- **"वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः.....मयि भाषमाणे"**। तृतीय अङ्क में राजा के प्रति आसक्ति के कारण उसकी मनःस्थिति उद्विग्न हो जाती है परन्तु अपनी सखियों से भी वास्तविक स्थिति बतलाने में वह सङ्कुचित होती है- **"यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः"**। यहीं नहीं जब एकान्त में उसका दुष्यन्त से मिलन होता है तब भी वह सहसा आत्मसमर्पण नहीं करती। उसे अपनी मर्यादा का ध्यान है, इसलिए वह राजा की आतुरता को देखकर शील की रक्षा करने के लिए कहती है और कामपीडित होने पर भी वह अपनी परवशता को प्रकट करती है- पौरव ! रक्ष विनय मदन सन्तप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि।

नाटक के अन्त में भी (सप्तम अङ्क में) जब राजा उससे कहता है शकुन्तले! पुत्र को संभालो। मैं तुमको आगे करके भगवान् मारीच के दर्शन करना चाहता हूँ-**"शकुन्तलेऽवलम्ब्यताम् पुत्रः। त्वां**

**पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि"**। तब वह उनके साथ गुरुजन के समीप जाने में होने वाली अपनी लज्जा का प्रकाशन इन शब्दों में करती है- **"जिह्मेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्"**। इस प्रकार हम देखते हैं कि दुष्यन्त के साथ प्रथम मिलन से लेकर अन्तिम मिलन तक शकुन्तला में लज्जा, शील, सङ्कोच एवं मर्यादा अक्षुण्ण रूप से बनी रहती है।

**५. स्वाभिमानिनी**– शकुन्तला के व्यक्तित्व में विनयशीलता के साथ स्वाभिमान का मणिकांचन योग है। उसका स्वाभिमान तब जागता है जब उसके सम्मान, आचरण एवं वंश आदि की गरिमा पर कोई चोट पहुँचाता है। ऐसा ही अवसर नाटक के पञ्चम अङ्क में उपस्थित होता है। राज दरबार में गौतमी, शार्ङ्गरव तथा शारद्वत की उपस्थिति में जब राजा **'किमिदमुपन्यस्तम्'** कह कर शकुन्तला के साथ अपने विवाह के विषय में अपनी अनभिज्ञता सूचित करता है तो उसके हृदय को अपमान का पहला धक्का लगता है। परन्तु वह शार्ङ्गरव और राजा के वाग्युद्ध को तब तक चुपचाप धैर्य के साथ सुनती रहती है जब तक गौतमी उसके घूंघट को हटाकर उसे अपने विवाह को प्रमाणित करने का आदेश नहीं देती। गौतमी के आदेश से वह **"आर्यपुत्र"!** इस सम्बोधन को कहकर भी रुक जाती है और एक प्रकार से उस सम्बोधन को वापस लेकर वह 'पौरव' इस सम्बोधन से राजा को सम्बोधित कर कठोरतापूर्वक कहती है– **"पोरव! न युक्तं.....प्रत्याख्यातुम्"**।

आगे जब अन्य प्रमाणों से भी राजा सन्तुष्ट नहीं हो पाता और आक्षेप करता ही रहता है तब तक भी वह सहती रहती है पर ज्यों ही वह **"स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम् पोषयन्ति"** कह कर समस्त स्त्री जाति को अपने दोषारोपण का निशाना बनाता है तब तो उसका स्वाभिमान वाचाल हो जाता है और वह रोषपूर्वक राजा को 'अनार्य' इस सम्बोधन से सम्बोधित करते हुए कहती है- **"अनार्य! आत्मनो हृदयानुमानेन प्रतिपत्स्यते"**। आर्य-नारी सब कुछ सहन कर सकती है। पर वह अपने प्रेम का अपमान तथा चरित्र का लांछन नहीं सह सकती। अन्त में पुरोहित के घर रहने का प्रस्ताव एवं शार्ङ्गरव की डाँट उसके स्वाभिमान को दोहरी ठेस पहुँचाते हैं। परिणामस्वरूप वह "भगवति वसुन्धरे! देहि मे विवरम्" कहकर माँ वसुन्धरा से शरण देने की याचना करती है।

**६. कार्यकुशला**- शकुन्तला शिक्षिता तो है ही साथ ही वह काव्य रचना में भी दक्ष है। वह अपनी सखियों के कहने पर प्रेमपत्र के अनुरूप गीत की रचना करती है-**"तव न जाने हृदयं वृत्तमनोरथान्यङ्गानि"**। वह पशु-पक्षियों के लालन-पालन, वनस्पतियों की देख-भाल तथा अतिथि सत्कार एवं गृह कार्यों में भी निपुण है। आश्रम से बाहर जाते समय महर्षि कण्व उसी के ऊपर अतिथि सत्कार का भार छोड़ते हैं- **"इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य ..... सोमतीर्थं गतः"**।

**७. आदर्श पुत्री एवं सखी**- पिता कण्व का शकुन्तला के प्रति अत्यन्त प्रगाढवात्सल्य भाव है। उनके अनुमति के बिना सम्पन्न शकुन्तला के गान्धर्व विवाह का उनके द्वारा किया गया समर्थन यह सिद्ध करता है कि वे पुत्री स्नेह से कितने कातर हैं। यह शकुन्तला जैसी धर्मपुत्री के ही सामर्थ्य की बात है। जो कण्व जैसे वनवासी वीतरागी को भी तनयाविश्लेषजनित दुःख से भाव विह्वल बना देती है- "यास्यत्यद्य शकुन्तलेति....."। अपने पितृवियोग से शकुन्तला अत्यन्त अधीर हो जाती है- "कथमिदानीं तातस्याङ्कात् जीवितं धारयिष्यामि" और उसे अपने पिता की चिन्ता विह्वल कर रही है।

उसमें एक आदर्श सखी के सभी गुण दिखलायी देते हैं। अनसूया एवं प्रियंवदा दोनों सखियों के साथ वह जिस प्रकार का सख्य भाव निभाती है वह अनुपम है। वह सुख-दुःख सङ्गिनी अपनी दोनों सखियों से अपने मनोगत भाव तक नहीं छिपा पाती। वह अपने साथ ही प्रियंवदा तथा अनसूया को भी पतिगृह ले जाना चाहती है- **"तात इत एव.....निवर्तिष्येते"** पर पिता कण्व उनकी कौमार्यावस्था को ध्यान में रखकर मना कर देते हैं- **"वत्से इमे अपि प्रदेये.....गन्तुम्"**।

**८. निसर्ग कन्या**- शकुन्तला का जन्म तथा लालन-पालन प्रकृति की गोद में होता है। परिणामस्वरूप वह प्रकृति के साथ इस प्रकार घुल-मिल जाती है कि उसके व्यक्तित्व एवं जीवन का आकलन प्रकृति से पृथक् करके नहीं किया जा सकता। नाटक में सर्वप्रथम उसके दर्शन प्रकृति की सेवा करते हुए ही होते हैं, जब वह अपनी प्रिय सखियों के साथ वृक्षों में सिंचन में संलग्न है। तपोवन के वनस्पतियों के प्रति उसका सहोदर स्नेह है। वनस्पतियों की सेवा वह **"आज्ञा गुरूणां विचारणीया"** की दृष्टि से नहीं

करती अपितु उनके प्रति भ्रातृतुल्य प्रेम होने के नाते करती है- **"न केवलं तातनियोग एव। अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु"**।

तपोवन के वृक्षों-लताओं के प्रति उसका भाई-बहन जैसा स्नेह है। पशु तथा पक्षियों को वह पुत्रवत् मानती है। वृक्षों को बिना सींचे वह जल नहीं पीती, प्रियमण्डना होने पर भी वृक्षों-लताओं से किसलयादि नहीं तोड़ती और उनमें पहले-पहल पुष्पादि के निकलने पर वह उत्सव मनाती है-**"पातु न प्रथमं.....सर्वैरनुज्ञायताम्"**।

मृगों की सेवा शुश्रूषा में वह सदा तत्पर रहती है। उनके मुख में कुशादि से बिंध जाने पर घावों को भरने वाली इंगुदी का तेल लगाती है। उन्हें श्यामाक की मुट्ठियाँ भर-भर कर खिलाती है। उन्हीं में से एक पुत्रवत् पालित मृग तो उसकी विदाई के समय विरहकातर होकर उसका मार्ग रोक देता है- **"यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां ..... पदवीं मृगस्ते"**।

मातृविहीन उस मृग को वह सान्त्वना देकर लौटाती है। कुटिया के पास सदा विचरण करने वाली गर्भमन्थरा मृगवधू के सुखप्रसव का समाचार भेजने के लिये पिता से कहती है-**"तात एषोटजपर्यन्त विसर्जयिष्यथ"**।

वृक्ष-लताओं के सिंचन के समय केसर वृक्ष को उसे पल्लव रूपी अंगुलियों के इङ्गित से अपनी ओर बुलाता सा प्रतीत होता है- **"वातेरित.....केसरवृक्षकः"**। विदा के समय वह वनज्योत्स्ना से उसकी शाखा-रूपी बाहों में लिपट कर उसी प्रकार गले मिलती है जिस प्रकार कन्यायें अपने पतिगृह-गमन बेला में अपनी माँ बहनों से गले लगती हैं।

प्रकृति की सेवा शकुन्तला का दैनन्दिन का व्रत बन गया है। वृक्ष-लता, पशु-पक्षी सभी उसके अभिन्न अङ्ग हो गये हैं। उसने अपने ममतामय व्यवहार से सबको इतने सान्निध्य में ला दिया है कि सभी एक ही स्नेहमय तादात्म्य के धागे में बंध से गये हैं। अतः यह कहना कठिन सा है कि प्रकृति शकुन्तला का अभिन्न अङ्ग है अथवा शकुन्तला प्रकृति का। ऐसी दशा में प्रकृति की लाड़ली पुत्री को यदि आलोचकगण 'निसर्ग कन्या' की उपाधि से विभूषित करते हैं तो कौन सा एहसान करते हैं? विदा के समय यदि वनस्पति शकुन्तला की सज्जा के लिये कौशीय तथा आभूषण आदि देते हैं यो यह

उनका दायित्व है- **"क्षोमं केनचिदिन्दु.....प्रतिद्वन्द्विमिः"**। पतिगृह जाते समय अपनी बेटी को कौन बाप नहीं सजाना चाहता? यदि मृगियों ने ग्रास चबाना छोड़ दिया है, मयूरों ने नाचना बन्द कर दिया है और लताओं ने पीले पत्तों के रूप में आँसू बहाना प्रारम्भ कर दिया है तो यह उनकी व्यथा की पुकार है। कौन ऐसा भाई और बहन है जो अपनी सगी बहन की विदाई में व्यथित नहीं होता? यह सब कुछ निसर्गकन्या शकुन्तला के निसर्ग के ( प्रकृति ) के प्रति उसके नैसर्गिक प्रेम का ही जादू है।